भारतीय दर्शन में है पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं पर मंडराते खतरों का हल

पश्चिमी देशों में उपभोक्तावाद के धरातल पर टिकी पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं पर आज स्पष्टत: खतरा मंडरा रहा है। 20वीं सदी में साम्यवाद के धराशायी होने के बाद एक बार तो ऐसा लगने लगा था कि साम्यवाद का हल पूंजीवाद में खोज लिया गया है। परंतु, पूंजीवाद भी एक दिवास्वप्न ही साबित हुआ है और कुछ समय से तो पूंजीवाद में छिपी अर्थ सम्बंधी कमियां धरातल पर स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगी है। पूंजीवाद के कट्टर पैरोकार भी आज मानने लगे हैं कि पूंजीवादी व्यवस्था के दिन अब कुछ ही वर्षों तक के लिए सीमित हो गए हैं और चूंकि साम्यवाद तो पहिले ही पूरे विश्व में समाप्त हो चुका है अत: अब अर्थव्यवस्था सम्बंधी एक नई प्रणाली की तलाश की जा रही है जो पूंजीवाद का स्थान ले सके। वैसे भी तीसरी दुनियां के देशों में तो अभी तक पूंजीवाद सफल रूप में स्थापित भी नहीं हो पाया है।

पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में सबसे अधिक परेशानी, समाज में लगातार बढ़ रही आर्थिक असमानता, मूल्य वृद्धि, श्रमिकों का शोषण एवं बढ़ती बेरोजगारी को लेकर है। पूंजीवाद के मॉडल में उपभोक्तावाद इस कदर हावी रहता है कि उत्पादक लगातार यह प्रयास करता है कि उसका उत्पाद भारी तादाद में बिके ताकि वह उत्पाद की अधिक से अधिक बिक्री कर लाभ का अर्जन कर सके। कई बार तो उत्पादन लागत एवं विक्रय मूल्य में भारी अंतर रहता है और इस प्रकार उपभोक्ता का भारी शोषण कर लाभ अर्जित किया जाता है। पूंजीवाद में उत्पादक के लिए चूंकि उत्पाद की अधिकतम बिक्री एवं अधिकतम लाभ अर्जन ही मुख्य उद्देश्य है अत: श्रमिकों का शोषण भी इस व्यवस्था में आम बात है।

येन केन प्रकारेण उत्पाद बेचने के प्रयास किए जाते हैं और इसके लिए उत्पाद के विज्ञापन का सहारा भी लिया जाता है। कई बार तो उत्पाद के विज्ञापन में कही गई बातें सत्य नहीं होती हैं परंतु इन्हें इतना आकर्षक तरीके से जनता के सामने पेश किया जाता है कि सामान्यजन को यह महसूस होने लगता है कि यदि हमने इस उत्पाद का उपयोग नहीं किया तो हमारा जीवन ही बेकार है। इस प्रकार, इस उत्पाद विशेष की बाजार में भारी मांग तो उत्पन्न कर दी जाती है परंतु उसकी आपूर्ति को सीमित ही रखा जाता है और उसे बाजार में मांग के अनुरूप उपलब्ध नहीं कराया जाता है। उत्पाद की मांग और आपूर्ति में उत्पन्न हुए भारी अंतर के चलते उत्पादों की कीमतों में वृद्धि होने लगती है और इसके कारण पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में मुद्रा स्फीति का दबाव लगातार बना रहता है और चूंकि मुद्रा स्फीति का सबसे अधिक विपरीत प्रभाव गरीब वर्ग पर ही पड़ता है इसलिए उपभोक्ता (गरीब) और अधिक गरीब होता चला जाता है और उत्पादक (अमीर) और अधिक अमीर होता चला जाता है। इस प्रकार पूंजीवादी

अर्थव्यवस्था के अंतर्गत समाज में आर्थिक असमानता का असर साफ तौर पर दिखाई देता है।

दूसरे, पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में उत्पादक भरपूर प्रयास करते हैं कि किसी भी प्रकार से उत्पाद की उत्पादन लागत को कम से कम रखा जाए ताकि उनकी लाभप्रदता में अधिक से अधिक वृद्धि हो सके। किसी भी वस्तु के उत्पादन में सामान्यत: पांच घटक कार्य करते हैं। भूमि, पूंजी, श्रम, संगठन एवं साहस। हां, आजकल छठे घटक के रूप में आधुनिक तकनीकि का भी अधिक इस्तेमाल होने लगा है। भूमि एवं आधुनिक तकनीकि पर एक बार ही निवेश कर लिया जाता है और यह एक पूंजीगत खर्च के रूप में होता है अत: उत्पाद की उत्पादन लागत में इसका योगदान कम ही रहता है।

उत्पादक ने यदि स्वयं ही पूंजी की व्यवस्था की है तो लाभ के रूप में उसका प्रतिफल उत्पादक को मिल ही जाता है और यदि बाजार से उधार लेकर पूंजी की व्यवस्था की गई है तो इसके लिए ब्याज के रूप में रकम का भुगतान किया जाता है और यह राशि उत्पादन लागत का हिस्सा बन जाती है। संगठन एवं साहस के लिए भी उत्पादक को लाभ के रूप में भुगतान मिल ही जाता है, अब बात रह जाती है श्रम के एवज में किए जाने वाले भुगतान की। चूंकि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में उत्पाद की उत्पादन लागत में कच्चे माल की लागत के बाद श्रमिकों को अदा की जाने वाली मजदूरी एवं वेतन का अधिक योगदान रहता है, अत: उत्पादकों द्वारा श्रमिकों का अत्यधिक शोषण किया जाता है ताकि इस मद पर बचत कर उत्पाद की उत्पादन लागत को कम रखा जा सके।

श्रमिकों का शोषण दो तरीके से किया जाता है, एक तो उन्हें उनकी वाजिब सुविधाओं से वंचित कर एवं उन्हें उचित मज़दूरी एवं वेतन अदा नहीं करके। दूसरे, उत्पादकता में वृद्धि करने के नाम पर आधुनिक मशीनों का अत्यधिक उपयोग करते हुए कम से कम मजदूरों को काम पर लगाना। जिसके चलते बेरोजगारी की भारी समस्या खड़ी होने लगती है, ऐसा हाल ही के समय में विकसित औद्योगिक देशों में दिखाई भी दे रहा है। इस प्रकार, पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में श्रमिकों का शोषण, बेरोजगारी, आर्थिक असमानता एवं मूल्य वृद्धि ऐसी स्थायी समस्यायें बन गईं हैं जिनका हल, अथक प्रयासों के बावजूद, किसी भी विकसित देश में दिखाई नहीं दे रहा है।

साम्यवाद के पूर्णत: असफल होने एवं पूंजीवादी मॉडल में लगातार पनप रही नई नई समस्याओं के कारण अब वैश्विक स्तर पर एक नए आर्थिक मॉडल की तलाश की जा रही है जो पूंजीवादी मॉडल में पनप रही समस्याओं का हल खोज सके। इस दृष्टि से आज पूरा विश्व ही भारत की ओर आशाभरी नजरों से देख रहा है क्योंकि एक तो भारत में सनातन धर्म पूरे विश्व में सबसे पुराना धर्म माना गया है और इस प्रकार पूर्व में भारतीय अर्थव्यवस्था की सम्पन्नता के कारणों का अध्ययन किया जा रहा है। दूसरे, एक समय था जब भारतीय अर्थव्यवस्था पूरे विश्व में सबसे बड़ी अर्थव्यस्था थी एवं भारत के ग्रामों में निवास कर रहे ग्रामीण बहुत अधिक सम्पन्न एवं सुखी थे। भारत तो अनाज, मसाले एवं कपड़ा आदि पदार्थों को, पूरे विश्व को, प्रचुर मात्रा में उपलब्ध कराता था। भारत के पौराणिक ग्रंथो, वेदों, उपनिषदों, शुक्रनीति, पुराणों, रामायण, महाभारत एवं कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी अर्थव्यवस्था को चलाने के सम्बंध में नियमों का वर्णन मिलता है। इन समस्त नियमों का आधार सनातन धर्म के मूल में केंद्रित है।

सनातन धर्म पर आधारित नियमों के अनुसार यह धरा हमारी मां है एवं प्रत्येक जीव को ईश्वर ने इस धरा पर खाने एवं तन ढकने की व्यवस्था करते हुए भेजा है। इसलिए इस धरा से केवल उतना ही लिया जाना चाहिए जितना जरूरी है। यह बात अर्थ पर भी लागू होती है अर्थात प्रत्येक व्यक्ति को उतना ही अर्थ रखना चाहिए जितने से आवश्यक कार्य पूर्ण हो सके बाकी के अर्थ को जरूरतमंदो के बीच बांट देना चाहिए, जिससे समाज में आर्थिक असमानता समूल नष्ट की जा सके। इस मूल नियम में ही बहुत गहरा अर्थ छिपा है। ईश्वर ने प्रत्येक जीव को इस धरा पर मूल रूप से आनंद के माहौल में रहने के लिए भेजा है।

विभिन्न प्रकार की चिंताएं तो हमने कई प्रपंच रचते हुए स्वयं अपने लिए खड़ी की हैं। सनातन धर्म में उपभोक्तावाद निषिद्ध है। उपभोक्तावाद पर अंकुश लगाने से उत्पाद की मांग नियंत्रित रहेगी एवं उसकी आपूर्ति लगातार बनी रहेगी जिसके चलते मूल्य वृद्धि पर अंकुश रहेगा और यदि परिस्थितियां इस प्रकार की निर्मित हों कि आपूर्ति लगातार मांग से अधिक बनी रहे तो कीमतों में कमी भी देखने में आ सकती है। इससे आम नागरिकों की आय की क्रय शक्ति बढ़ सकती है एवं बचत में वृद्धि दृष्टिगोचर होने लग सकती है।

हमारे धर्म शास्त्रों, वेदों एवं पुराणों में वर्णन मिलता है कि राज्य में नागरिकों द्वारा किए जाने वाले व्यापार के लिए ब्याज रहित वित्त की व्यवस्था राज्य द्वारा की जाती थी और प्रत्येक व्यक्ति उत्पादन के अन्य घटकों का मालिक स्वयं ही रहता था एवं प्रत्येक व्यक्ति आर्थिक उपक्रमों में संलग्न रहता था और इस प्रकार इन राज्यों में बेरोजगारी बिल्कुल नहीं रहती थी। प्रत्येक परिवार चूंकि आर्थिक उपक्रम में संलग्न रहता था अत: परिवार के सभी सदस्य इस पारिवारिक उपक्रम में कार्य करते थे और कोई भी बेरोजगार नहीं रहता था एवं परिवार के सभी सदस्यों को आर्थिक सुरक्षा प्रदत्त रहती थी। श्रमिकों के शोषण की समस्या से भी निदान हो जाता था।

वर्तमान परिस्थितियों में, भारतीय अर्थव्यवस्था में भी ब्याज रहित वित्त की व्यवस्था यदि केंद्र सरकार द्वारा की जाती है तो भारत में निर्मित वस्तुओं की उत्पादन लागत कम रखते हुए इन्हें पूरे विश्व को निर्यात करने की स्थिति प्राप्त की जा सकती है। हाल ही में केंद्र सरकार ने कोरोना महामारी के दौरान प्रभावित हुए रेड़ी वाले, ठेले वाले, एवं फुटपाथ पर व्यापार करने वाले गरीब वर्ग के लोगों के लिए ब्याज रहित ऋण योजना की घोषणा की थी। हां, इस योजना के अंतर्गत ब्याज रहित ऋण प्राप्त करने के लिए ऋण की किश्तों का भुगतान समय पर करना आवश्यक था। इस योजना के अंतर्गत प्रदान किए गए ऋणों पर ब्याज की राशि का भुगतान केंद्र सरकार द्वारा बैंकों को किया गया था।

भारतीय अर्थशास्त्र में पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में उत्पन्न हो रही समस्त कमियों को दूर करने की क्षमता है। साथ ही, भारतीय अर्थशास्त्र पूंजीवाद की वैकल्पिक व्यवस्था के तौर पर सफलतापूर्वक उभर सकता है। अत: भारतीय अर्थशास्त्र का गहराई से अध्ययन करते हुए इसमें वर्णित नीतियों को धीरे धीरे देश में लागू किए जाने की आवश्यकता है, यदि यह मॉडल, वर्तमान परिस्थितियों में, भारत में सफल होता है तो इसे पूरा विश्व ही अपना सकता है।

प्रहलाद सबनानी

सेवा निवृत्त उप महाप्रबंधक,
भारतीय स्टेट बैंक
के-8, चेतकपुरी कालोनी,
झांसी रोड, लश्कर,
ग्वालियर – 474 009
मोबाइल क्रमांक – 9987949940
ई-मेल – psabnani@rediffmail.com